सार्वजनिक विश्वविद्यालयों पर खतरा

2015 दिसंबर को नैरोबी में विश्व व्यापार संगठन का मंत्रिस्तरीय सम्मेलन हुआ था, जिसमें शिक्षा सेवाओं में अंतरराष्ट्रीय व्यापार की बात तय हुई थी। इसी के मद्देनजर केन्द्र सरकार ने हाल ही में उच्च शिक्षा वित्तीय एजेंसी (Higher Education Financing Agency (HEFA)) संस्था की घोषणा की है, जो देश के कुछ उच्च शिक्षण संस्थानों को निधि प्रदान करेगी। इस अंतरिम अवधि में देश के कई सार्वजनिक विश्वविद्यालयों को अपनी स्वायत्तता एवं शोध के क्षेत्र को बचाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ेगा।

- सार्वजनिक विश्वविद्यालयों की सार्थकता क्या है?
    - ये विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में एक तरह से समानाधिकारी जनादेश का प्रतिनिधित्व करते हैं। आज के तकनीकी युग में ये विश्वविद्यालय कला, समाज, प्राकृतिक विज्ञान जैसे संकायों के अस्तित्व को बचाकर चल रहे हैं। भ्रष्टाचार, संघर्षपूर्ण क्षेत्रों में बच्चों की स्थिति तथा मीडिया की स्वतंत्रता आदि समाज से जुड़े अनेक ऐसे विषय हैं, जिन पर सर्वेक्षण एवं शोध की आवश्यकता है। शिक्षा को मात्र व्यापार का एक साधन समझने वाले लोगों के लिए सामाजिक विषयों का कोई महत्व नहीं है। परंतु समाज के लिए ऐसे शोधों का बहुत महत्व होता है, क्योंकि ये समाज को बेहतर बनाने में निश्चित रूप से सहयोग देते हैं।
    - सार्वजनिक विश्वविद्यालय तो समग्रता एवं सामाजिक न्याय की जीती जागती तस्वीर होते हैं। कई बार तो शिक्षा के विद्वानों के लिए लंबा रास्ता करने के लिए ये अंतिम विकल्प के रूप में बच जाते हैं। ये विश्वविद्यालय शोधकर्ताओं के लिए उनके शोधों की गहराई और संवेदनशीलता को समझने में भी बहुत सहायक होते हैं।
- सार्वजनिक विश्वविद्यालयों की सीमाएं
    - ये विश्वविद्यालय पुरातनपंथी कहे जा सकते हैं। यहाँ उच्च स्तरीय पत्रिकाओं के लिए धनराशि का अभाव है। विद्यार्थियों को अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेने के लिए भेजना दुष्कर है। पुस्तकालयों के आधुनिकीकरण की बात तो बहुत दूर की लगती है।

बहरहाल, अब विदेशी विश्वविद्यालयों का आना तय है, और इनके आने के साथ ही कला संकाय का लगभग खत्म होना भी तय है। विदेशी विश्वविद्यालयों को लाने के पीछे शिक्षा के स्तर को बढ़ाने का जो उद्देश्य है, उसमें जरूर संदेह लगता है, क्योंकि इन विश्वविद्यालयों में उन उत्कृष्ट शोधों को कोई स्थान नहीं मिलने वाला, जिन्हें सार्वजनिक विश्वविद्यालयों ने दे रखा है। दरअसल, लोग इन विदेशी विश्वविद्यालयों की डिग्री के भूखे हैं, और इनकी सनक में अमरिका की तरह ही कहीं हमारे नौजवान भी शिक्षा के कर्ज में डूब न जाएं।यह बात समझ से परे है कि हम अपने कला, समाज तथा प्राकृतिक विज्ञान जैसे संवेदनशील विषयों पर किए जा रहे शोधों के प्रति संकोच में क्यों हैं? हमें तो उन्हें दुनिया के सामने लाने की आवश्यकता है, जिससे हमारे सार्वजनिक विश्वविद्यालयों का सिर ऊँचा हो सकें।

'द हिन्दू ' में प्रकाशित अपर्णा विन्सेंट और प्रीति रघुनाथ के लेख पर आधारित